वैचारिक संघर्ष

आज मानव-समाज में वैचारिक संघर्ष विशेष रूप से राजनीतिक पार्टियों के संघर्ष और धार्मिक संघर्ष भी अपनी चरम सीमा पर हैं। आज धर्म के नाम पर मनुष्य एक-दूसरे के खून का प्यासा है। महावीर की दृष्टि में इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि हम अपने ही धर्म, सम्प्रदाय या राजनीतिक मतवाद को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं और इस प्रकार दूसरों के धर्म या मन्तव्यों की आलोचना करते हैं। महावीर का कहना था कि दूसरे धर्म, सम्प्रदाय या मतवाद को पूर्णतः मिथ्या कहना ही हमारी सबसे बड़ी भूल है। वे कहते हैं कि जो लोग अपने-अपने मत की प्रशंसा और दूसरे के मतों की निन्दा करते हैं, वे सत्य को ही विद्रूपित करते हैं। महावीर की दृष्टि में सत्य का सूर्य सर्वत्र प्रकाशित हो सकता है, अतः हमें यह अधिकार नहीं है कि हम दूसरों को मिथ्या कहें। दूसरों के विचारों, मतवादों या सिद्धान्तों का समादर करना महावीर के चिन्तन की सबसे बड़ी विशेषता रही है। वे कहते थे कि दूसरों को मिथ्या कहना ही सबसे बड़ा मिथ्यात्व है। भगवान महावीर ने जिस अनेकान्तवाद की स्थापना की उसका मूल उद्देश्य विभिन्न धर्मों, सम्प्रदायों और मतवादों के बीच समन्वय और सद्भाव स्थापित करना है। उनके अनुसार हमारी आग्रहपूर्ण दृष्टि ही हमें सत्य को देख पाने में असमर्थ बना देती है। महावीर की शिक्षा आग्रह की नहीं अनाग्रह की है। जब तक दुराग्रह रूपी रंगीन चश्मों से हमारी चेतना आवृत रहेगी, हम सत्य को नहीं देख सकेंगे।

वे कहते थे कि सत्य, सत्य होता है, उसे मेरे और पराये के घेरे में बाँधना उचित नहीं है। सत्य जहाँ भी हो, उसका आदर करना चाहिए। महावीर के इस सिद्धान्त का प्रभाव परवर्ती जैनाचार्यों पर भी पड़ा है। आचार्य हरिभद्र कहते हैं कि व्यक्ति चाहे श्वेताम्बर हो या दिगम्बर, बौद्ध हो या अन्य धर्मावलम्बी, यदि वह समभाव की साधना करेगा, राग, आसक्ति या तृष्णा के घेरे से उठेगा तो वह अवश्य ही मुक्ति को प्राप्त करेगा। अपने ही धर्मवाद से मुक्ति मानना यही धार्मिक सद्भाव में सबसे बड़ी बाधा है। महावीर का सबसे बड़ा अवदान है कि उन्होंने हमें आग्रहमुक्त होकर सत्य देखने की दृष्टि दी और इस प्रकार मानवता को धर्मों, मतवादों के संघर्षों से ऊपर उठना सिखाया। महावीर का यह अनाग्रही या अनेककांतवादी दृष्टिकोण इक्कीसवीं सदी में वैचारिक संघर्षों के निराकरण का अमोघ उपाय सिद्ध होगा। राजनीति के क्षेत्र में यही प्रजातन्त्र की सुरक्षा कर उसे जीवित रख सकेगा।

आर्थिक संघर्ष

आज विश्व में जब कभी युद्ध और संघर्ष के बादल मँडराते हैं तो उनके पीछे कहीं न कहीं कोई आर्थिक स्वार्थ होते हैं। आज का युग अर्थप्रधान युग है। मनुष्य में निहित संग्रह-वृत्ति और भोग-भावना अपनी चरम सीमा पर है। वस्तुतः हम अपने स्वार्थों से ऊपर उठकर दूसरों की पीड़ाओं को जानना ही नहीं चाहते। अपनी संग्रह-वृत्ति के कारण हम समाज में एक कृत्रिम अभाव उत्पन्न करते हैं। जब एक ओर संग्रह के द्वारा सम्पत्ति के पर्वत खड़े होते हैं तो दूसरी ओर स्वाभाविक रूप से खाइयाँ बनती हैं। फलतः समाज धनी और निर्धन, शोषक और शोषित ऐसे दो वर्गों में बंट जाता है और कालान्तर में इनके बीच वर्ग-संघर्ष प्रारम्भ होते हैं। इस प्रकार समाज-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती है। समाज में जो भी आर्थिक विषमताएँ हैं, उसके पीछे महावीर की दृष्टि में परिग्रह वृत्ति ही मुख्य है। यदि समाज से आर्थिक संघर्ष समाप्त करना है तो हमें मनुष्य की संग्रह-वृत्ति और भोगवृत्ति पर अंकुश लगाना होगा। महावीर ने इसके लिए अपरिग्रह, परिग्रह-परिमा और उपभोग-परिभोग-परिमाण के व्रत प्रस्तुत किए। उन्होंने बताया कि मुनि को सर्वथा अपरिग्रही होना चाहिए। साथ ही गृहस्थ को भी अपनी सम्पत्ति का परिसीमन करना चाहिए, उनकी एक सीमा-रेखा बना लेना चाहिए।

इसी प्रकार उन्होंने वर्तमान उपभोक्तावादी संस्कृति के विरोध में मनुष्य को यह समझाया था कि वह अपनी आवश्यकताओं और इच्छाओं को सीमित करे। महावीर कहते थे कि मनुष्य को जीवन जीने का अधिकार तो है, किन्तु उसे दूसरों को उनकी सुख-सुविधा से वंचित करने का अधिकार नहीं है। उन्होंने व्यक्ति को खान-पान आदि वृत्तियों पर संयम रखने का उपदेश दिया था। यह जानकर सुखद आश्चर्य होता है कि भगवान महावीर ने आज से २५०० वर्ष पूर्व अपने गृहस्थ उपासकों को यह निर्देश दिया था कि वे अपने खान-पान की वस्तुओं की सीमा निश्चित कर लें। जैन-आगमों में इस बात का विस्तृत विवरण है कि गृहस्थ को अपनी आवश्यकता की किन-किन वस्तुओं की मात्रा निर्धारित कर लेनी चाहिए। अभी विस्तार से चर्चा में जाना सम्भव नहीं है, फिर भी इतना कहा जा सकता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस उत्तर से पुलिस विभाग, जासूसी विभाग, न्यायालय आदि की उपयोगिता समाप्त नहीं हो जाती है। साम्प्रदायिक सौहार्द, उन्नत राजनीतिक वातावरण, कुशल एवं चुस्त प्रशासकीय मशीनरी आदि भी किसी रूप में उस व्यक्ति के पुत्र की मृत्यु के लिए अपराधी हैं। गाँधीजी जब उक्त सलाह दे रहे होते हैं, तब गाँधीजी भी ये सभी पक्ष जान रहे होते हैं। वे इन पक्षों को नकारते नहीं है। वे तो आवश्यकतानुसार इन पक्षों को गौण करते हैं। वे इन पक्षों को गौण करके आध्यात्मिक पक्ष की तरफ उस परिस्थिति में उस व्यक्ति को ले जाना चाहते हैं।

सच्ची अनेकान्तमयी समझ में भौतिक कारणों के अतिरिक्त आध्यात्मिक पहलू भी एक विशेष स्थान रखता है। अपने तनावों के संदर्भ में उपकारी व अपराधी के निर्णय में भी ऐसी ही अनेकांत दृष्टि की आवश्यकता है, जहाँ सभी पक्षों का यथायोग्य ज्ञान भी हो व यह विवेक भी हो कि किस प्रश्न का किस सन्दर्भ में समुचित उत्तर क्या होगा?

अध्यात्म की विस्तृत व्याख्या आगे वर्णित की जा रही है। तनावग्रस्त व्यक्ति की समस्या के कई उत्तरों में से यह भी एक उत्तर है। यह उत्तर कब व कितना उपयोगी हो सकता है, यह समस्याग्रस्त व्यक्ति के विवेक एवं विकास की स्थिति पर निर्भर करेगा। तनाव कम करने में ही नहीं अपितु मानसिक एवं भावनात्मक स्वास्थ्य बनाए रखने में भी यह दृष्टिकोण अनेकों के जीवन में अत्युपयोगी सिद्ध हुआ है।

३. आध्यात्मिक दृष्टिकोण

हमारे जीवन में कई घटनाएँ होती हैं। हमें कोई पढ़ाता है। कोई हमारी चिकित्सा करता है। कोई ईर्ष्या या अज्ञान या बदले की भावना से नीचे गिराना चाहता है। इन अपेक्षाओं से हमारे जीवन में हमारे लिए कई निर्विवाद रूप से उपकारी एवं कई निर्विवाद रूप से अपराधी नजर आते हैं। वस्तु-व्यवस्था की व्याख्या यहाँ ही समाप्त नहीं होती है। जो डॉक्टर आपके लिए उपकारी है, वही डॉक्टर आपके ही साथी किसी अन्य असफल रोगी को अपराधी नजर आ सकता है, जबकि दोनों का समान ऑपरेशन उसने समान सावधानी एवं विशेषज्ञता के साथ किया है।

किसी भी कार्यक्रम या घटना की सफलता एवं असफलता के लिए कई जिम्मेदार कारण बताए जा सकते हैं। समस्त भौतिक कारणों के मूल में, अध्यात्म के अनुसार एक सुंदर एवं सरल व्याख्या है। अध्यात्म के अनुसार जो कुछ भी किसी के जीवन में घटित होता है, उसके लिए वह आत्मा ही जिम्मेदार है। उसके द्वारा ही किए गए शुभ कार्यों का अच्छा एवं अशुद्ध, अशुभ कर्मों का बुरा फल उसे मिलता है। कहा गया है -

"उवग्गरं अवयारं कम्मं पि सुहासुहं कुणदि।"[1]

इसका भावार्थ यह है कि जीव द्वारा किए गए शुभ-अशुभ कर्म ही जीव का उपकार-अपकार करते हैं। 'जैसा बोओगे-वैसा ही काटोगे' इस कथन से भी हम भलीभाँति परिचित हैं ही। एक एक्सीडेंट से बालक की मृत्यु होने पर यह कहा जाएगा कि बालक के सुख-दुःख के लिए बालक की आत्मा तथा माता-पिता एवं परिजनों के दुःख के लिए माता-पिता एवं परिजनों की आत्मा के पूर्व कर्म जिम्मेदार हैं। सभी के दुःख की मात्रा में भी भिन्नता हो सकती है।

उक्त आध्यात्मिक तथ्य की मूल भावना समझने हेतु एक सरल प्रश्न पर विचार कर सकते हैं - 'यदि मेरे नाम[2] पर दस लाख रुपये की लाटरी[3] खुलती है, तो उसके लिए जिम्मेदार कौन है ? उसका श्रेय किसको दें व क्यों दें ?'

इस प्रश्न के उत्तर में आधुनिक सांख्यिकी का यह उत्तर होता है कि लाटरी में कोई भी नंबर निकल सकता था, प्रत्येक नंबर निकलने की संभावना समान थी। यह संयोग यानी चांस की बात है कि निकला हुआ नंबर आपका था। आधुनिक विज्ञान के पास इस प्रश्न का उत्तर देने हेतु और भी अधिक विस्तार करने की क्षमता है। बहुत सूक्ष्म विवेचन करने वाला भौतिक विज्ञान मेरे नंबर निकलने का कारण लाटरी की मशीन में शुरू में क्या था व कितना उसे हिलाया गया या घुमाया गया उसके आधार पर बता सकता है किन्तु पुनः प्रश्न उठता है कि मशीन को उतना ही क्यों घुमाया गया व शुरू में ऐसा ही क्या था कि अंत में मेरा नंबर निकला और अधिक सूक्ष्म विवेचन करने वाले इसका संबंध मशीन को घुमाने वाले व्यक्ति के शरीर के परमाणुओं, मानसिकता आदि एवं मशीन के पूर्व इतिहास के आधार पर कह सकते हैं। प्रश्न पुनः यह हो सकता है कि वे परमाणु, मानसिकता, इतिहास आदि ऐसी अवस्था में ही क्यों थे, जिससे अन्ततोगत्वा दस लाख रुपये का लाभ मुझे मिला?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्नों एवं उत्तरों की यह शृंखला आगे से आगे बढ़ती रह सकती है किन्तु सामान्य चिन्तन या प्रचलित तर्क में कहीं भी यह गुंजाइश नहीं है, जो यह बता सके कि मेरे नाम पर लाटरी खुलना महज संयोग न होकर सृष्टि के अकाट्य नियमों पर आधारित है। 'महज संयोग' जैसे शब्द किसी अपेक्षा हमारी अज्ञानता ही बताते हैं।

यह महज संयोग वाली बात आइन्स्टीन जैसे वैज्ञानिक स्वीकार नहीं करते हैं। आइन्स्टीन जैसे वैज्ञानिक यह कहेंगे कि आज के अच्छे से अच्छे कम्प्यूटर भी इसका हिसाब तो नहीं लगा सकते हैं कि लाटरी से कौनसा नंबर निकलेगा किन्तु वैज्ञानिक चिन्तन इससे सहमत है कि सृष्टि के समस्त कण निश्चित नियमों के अनुसार ही हलन-चलन करते हैं अतः जो भी नंबर निकला है, वह नियमों के अनुसार ही निकला है, यानी उस परिस्थिति में वह नंबर निकलना न तो वैज्ञानिक आश्चर्य है और न ही चांस[४] या महज संयोग। इसी प्रकार जिस परिस्थिति में मुझे जो भी लाटरी का टिकट मिला है, वह भी न तो वैज्ञानिक आश्चर्य है और न ही चांस।

इस प्रकार धुरंधर वैज्ञानिक गहराई में चांस शब्द की ऐसी व्याख्या करते हैं कि चांस भी प्रकृति के नियमों के अधीन एक व्यवस्था सिद्ध होता है। इतना होते हुए भी यह प्रश्न फिर भी विचारणीय रह जाता है कि एक रुपया खर्च करके लाटरी के टिकट तो लाखों व्यक्तियों ने खरीदे किन्तु मैंने ऐसा क्या विशेष कार्य किया था कि बदले में मुझे दस लाख रुपयों की प्राप्ति हुई? जैसे कोई व्यक्ति हमारे कार्यालय में आए व हम यह पूछें कि 'आप कैसे पधारे?' इसका उत्तर यदि आगन्तुक यह दे कि वह स्कूटर से आया है या अमुक सिटी बस से बस स्टॉप पर आया व फिर पैदल चलकर आया है, तो यह उत्तर कितना अप्रासंगिक होगा। हम उसके आगमन का मूल प्रयोजन जानना चाहते हैं और वे आगमन की विधि बता रहे हैं।

कुल मिलाकर स्थिति यह है कि भौतिक विज्ञान लाटरी खुलने की विधि बता सकता है किन्तु यह नहीं बता सकता है कि मेरे किस कार्य के प्रतिफल में मुझे इतना लाभ मिला है। इस प्रकार के प्रश्न के उत्तर के अभाव में एक व्यक्ति लाटरी खुलने पर तो भाग्य कहकर बात समाप्त कर देता है किन्तु एक्सीडेंट आदि से हानि होने पर सारी दुनिया को दोषी बताते हुए दुःखमग्न हो जाता है।

यहाँ अध्यात्म इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर देता है। अध्यात्म जीवन को अनंत मानता है। अध्यात्म के अनुसार मेरी आत्मा के अनंत जीवन के किसी बिन्दु पर या किन्हीं बिन्दुओं पर मेरे द्वारा ही ऐसा कुछ हुआ था, जिससे अभी दस लाख की लाटरी की प्राप्ति की प्रसन्नता मिली है या दस लाख रुपये खर्च करने की सामर्थ्य प्राप्त हुई है। क्या किया व कब किया? इनके गणितीय सूत्र मनुष्य के ज्ञान की सीमा से परे प्रतीत होते हैं किन्तु यह जानना एवं मानना कि 'मेरे कार्यों का फल मुझे मिलता है' अपने आपमें मानवीय ज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र बनता है। इस सूत्र से 'कारण-कार्य सिद्धान्त' की रक्षा होती है। यह सूत्र कई विद्वानों ने कई रूपों में दिया है। पाश्चात्य विद्वान वेन डायर[५] लिखते हैं -

There truly are no accidents. This Universe is working perfectly including all the subatomic particles that make up you and those you blame. It is all just as it is supposed to be. Nothing more nothing less.

इन पंक्तियों का भावार्थ यह है कि -

"सचमुच में देखा जाए तो सृष्टि में एक्सीडेंन्ट नहीं होते हैं। सृष्टि के प्रत्येक अवयव सहित यह सम्पूर्ण सृष्टि पूर्णतया उचित विधि से कार्य कर रही है। सब कुछ जैसा होना चाहिए वैसा ही है। न तो ज्यादा और न कम।"

इसी क्रम में लुई हे[६] की निम्नांकित पंक्तियाँ भी ध्यान देने योग्य हैं-

I believe that everyone, myself included, is 100% responsible fore every, thing in our lives the best and the worst.

इन पंक्तियों का भावार्थ यह है कि -

"मेरी आस्था यह है कि हमारे जीवन में होने वाली समस्त अच्छी एवं बुरी घटनाओं के लिए हममें से प्रत्येक व्यक्ति १०० प्रतिशत जिम्मेदार है।"

इन पंक्तियों के आशय का खुलासा करते हुए लुई हे आगे लिखती हैं कि गहराई से देखा जाए, तो अन्य व्यक्ति या स्थान या वस्तु दोष के पात्र नहीं हैं।

इसी तथ्य को अधिक वजन के साथ व्यक्त करने हेतु वेन डायर[७] एक उदाहरण देते हुए समझाते हैं कि जैसे हमारे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वप्न में जब कोई जानवर या मनुष्य दिखाई देता है, तब उसका कारण वह जानवर या मनुष्य नहीं होकर स्वप्न देखने वाला स्वयं ही होता है, उसी प्रकार हमारे जीवन में भी जो कुछ दिखाई देता है, वह हमारे आमंत्रण से ही आता है।

इस तरह की आध्यात्मिक व्याख्या को भौतिक विज्ञान या गणित के सूत्रों की तरह से नहीं समझाया जा सकता है किन्तु एक बार ऐसी आध्यात्मिक समझ होने पर जीवन के कई तनाव हल हो सकते हैं। हमारे जीवन में कई घटनाएँ ऐसी हो सकती हैं, जिनमें हमें ऐसा लगता है कि दूसरों की गलती से हमें नुकसान हुआ है। नुकसान की पूर्ति हेतु हमारे जो भी लौकिक प्रयास होते हैं, वे किसी अपेक्षा से उचित व किसी अपेक्षा से अनुचित हो सकते हैं किन्तु हमारे विचारों में जो तनाव एवं घृणा उस व्यक्ति के प्रति होती है, उससे हमारा ही समय कष्टप्रद बनता है एवं शारीरिक स्वास्थ्य बिगड़ता है। इसके विपरीत जब हम अपने नुकसान के लिए दूसरों को पूर्णतया जिम्मेदार नहीं मानते हैं, तब हमारे तनाव बहुत कम रह जाते हैं।

श्रेय देने व श्रेय लेने से संबंधित समस्याओं पर भी उपर्युक्त विश्लेषण उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

विज्ञान के विकास के लिए भी यह एक अच्छा विषय कुछ या कई वर्षों बाद बन सकता है।

यह व्याख्या समस्या का एक पहलू है। अन्य पक्षों पर भी विचार करने की आवश्यकता है। चोर या हत्यारे को सजा देना भी समाज में क्या आवश्यक है? इस तरह के प्रश्न को अब हम अनेकान्त के साथ आगे देखते हैं।

अपराध एवं अपराधी की अनेकान्तमयी व्याख्या

इतना सब पढ़ने के बाद पाठक के मस्तिष्क में कई प्रश्न उपस्थित हो सकते हैं। संभावित प्रश्नों का समाधान अनेकान्त व्याख्या द्वारा हो सकता है। निम्नांकित उदाहरण द्वारा एकान्त व्याख्याओं एवं अनेकान्त व्याख्याओं का अंतर समझने से कई प्रश्नों के हल हो सकते हैं।

एक घटना पर विचार करें। घटना यह है कि एक चोर ने एक व्यापारी को यातना पहुँचाई व उसका धन छीना। इस घटना से संबंधित एकान्त कथन निम्नांकित हो सकते हैं –

पहला एकान्त कथन – अनावश्यक रूप से उस चोर ने व्यापारी के जीवन में आकर व्यापारी को यातना पहुँचाई व धन छीना, अतः चोर सजा का पात्र है।

दूसरा एकान्त कथन – व्यापारी की हानि एवं यातना उसकी ही आत्मा द्वारा किए गए पिछले कर्मों का फल है अतः चोर दोषी नहीं है। चोर को सजा नहीं मिलना चाहिए।

अब अनेकान्त दृष्टि से देखें, तो हमें उपर्युक्त दोनों कथनों की त्रुटियाँ ज्ञात होंगी। अनेकान्त दृष्टि से निम्नांकित चार बिन्दु एक साथ महत्त्वपूर्ण हैं –

(क) चोर ने लालच किया। चुराने के लिए बुरे भाव रखे। चुराने का बुरा प्रयत्न किया। चोर के बुरे भाव एवं बुरे प्रयत्न हेतु चोर जिम्मेदार है व सजा का पात्र है।

(ख) व्यापारी की हानि उसके ही कर्मों का फल है।

(ग) अध्यात्म पर विश्वास रखने वाला व्यापारी उक्त बिन्दु (ख) में विश्वास के कारण हानि के लिए कम खेद महसूस करेगा। उसके तनाव कम होंगे। अध्यात्म को जानने वाला बिन्दु (क) को भी जान रहा हो सकता है। बिन्दु (क) एवं (ख) विपरीत प्रतीत होते हैं किन्तु दोनों में विरोध नहीं है। ये (क) और (ख) एक साथ लागू होते हैं।

(घ) अध्यात्म को चूँकि व्यापारी ने समझा है, विश्वास किया है, श्रद्धा है किन्तु उसके जीवन में अभी अध्यात्म थोड़े ही अंशों[५] में उतरा है (संत नहीं है)। अतः व्यापारी अपने पुराने संस्कारों के वश स्वयं के हित की भावना से या जनहित की भावना से चोर को पकड़वाने व वापस धन प्राप्त करने के प्रयत्न करे, तो कोई आश्चर्य नहीं।

इस उदाहरण से कई संभावित प्रश्न हल हो सकते हैं। जो गृहस्थ व्यक्ति जीने की कला में चतुर हैं व जिन्होंने अध्यात्म का उक्त रहस्य समझा है, वे किसी भी हानि से अधिक समय तक अशांत नहीं बने रहते हैं। आक्रोश व क्रोध अधिक समय तक ऐसे व्यक्तियों को परेशान नहीं करता है। जहाँ तक हानि की क्षतिपूर्ति का प्रश्न है, वे परिस्थिति के अनुसार या तो हानि को स्वीकार करके भूलने का प्रयास करते हैं या यथायोग्य कार्यवाही करते हैं किन्तु दोनों अवस्थाओं में, संबंधित व्यक्ति के प्रति हृदय में शत्रुता के भाव शून्य के बराबर करने का सहज ही प्रयास होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस सन्दर्भ में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करना रह गया है कि यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु उसके ही कर्मों का फल है व हत्यारे को उसके मारने के बुरे भावों व मारने के बुरे प्रयत्नों की ही सजा मिलती है, तो फिर ऐसा क्यों कहा जाता है कि अमुक हत्यारे ने अमुक व्यक्ति को मारा है?

इसके समाधान में यह कहा जा सकता है कि कम शब्दों में अधिक तथ्य आ जाने की सुविधा से ही माँ बच्चे को कहती है कि 'आटा पिसा लाओ।' इस वाक्य में दो कथन आ गए हैं - ये गेहूँ पिसाने हैं व गेहूँ का दलिया नहीं बनवाना है अपितु आटा बनवाना है। इसी प्रकार 'उसने एक व्यक्ति को मारने का अपराध किया है।' इस एक पंक्ति में तीन बातें आ जाती हैं - मारने का इरादा किया है, मारने का प्रयत्न किया है व मारने का प्रयत्न आधा-अधूरा न होकर पूर्ण हुआ है। स्पष्ट है कि तीन पंक्तियों के बदले एक पंक्ति का उपयोग अधिक सुविधाप्रद है व उस व्यक्ति के रिकार्ड एवं सजा की दृष्टि से भी इस तरह की एक पंक्ति के उपयोग से कोई अंतर नहीं पड़ता है अतः उक्त एक पंक्ति का उपयोग इस अपेक्षा से उचित ही है।

सारांश यह है कि मरने वाला अपने कर्मों के फल से मरता है किन्तु मारने वाला अपने मारने के बुरे भाव एवं बुरे प्रयत्न के कारण समाज में व प्रकृति की व्यवस्था में सजा का पात्र बनता है।

लाभ एवं उपकार की स्थिति में भी ऐसा ही अनेकान्त लागू होता है (क) लाभ पाने वाले व्यक्ति के कर्मों के फल से उसे लाभ मिलता है। (ख) जिसने लाभ पहुँचाने का प्रयास किया है, वह व्यक्ति उसके अच्छे विचारों एवं अच्छे प्रयत्नों के लिए प्रशंसा, प्रतिष्ठा एवं प्रोत्साहन का पात्र बनता है एवं (ग) लाभ पाने वाला आध्यात्मिक गृहस्थ लाभ पहुँचाने वाले व्यक्ति के प्रति यथायोग्य आभार भी अनुभव करता है।

प्रकृति की व्यवस्था की समझ का लाभ

प्रकृति की व्यवस्था की यह आध्यात्मिक समझ व्यक्ति को आध्यात्मिक विकास की तरफ तो अग्रसर करेगी ही किन्तु साथ ही जीवन की कई दुःखदायी समस्याओं में भी प्रकाश का स्रोत बन सकेगी। जीवन की ऐसी कई भौतिक समस्याओं में से निम्नांकित समस्याओं में इस आध्यात्मिक समझ का लाभ स्पष्ट नजर आ सकता है।

१. उचित रोजगार की प्राप्ति में देरी होने पर तनावग्रस्त होकर निराश हो जाना।

२. अपने या अपने परिवार के सदस्यों की शादी हेतु योग्य साथी की खोज में देरी होने पर तनाव ग्रस्त होकर निराश हो जाना।

३. जब अपने व्यक्ति ही पराए की तरह व्यवहार करने लगें, तब तनावयुक्त होकर दुनिया को धिक्कारना।

४. आकस्मिक आपत्ति के आगमन पर घबरा जाना।

५. आगामी संभावित विपत्ति से भयभीत होना।

६. यशयोग्य कार्य के बदले अपयश के मिलने से दुःखी होना।

७. जाने-अनजाने में अपने निमित्त से अन्य की हानि या स्वयं की हानि का इतना पछतावा होना कि सदैव अपने को ही धिक्कारते रहना व किसी अन्य कार्य में रुचि न रहना।

८. प्रकृति की व्यवस्था पर अविश्वास के कारण अपनी आर्थिक एवं शारीरिक सुरक्षा हेतु भौतिक साधनों एवं यश की असीमित उपलब्धि के संचय की भावना से स्वयं की शक्ति, शान्ति एवं रिश्तों का बलिदान करना व अन्य परिचित-अपरिचित व्यक्तियों के शोषण की भावना रखना।

मनोवैज्ञानिक भी इस तरह की समस्याओं का समाधान अच्छी सफलता के साथ कर रहे हैं किन्तु आध्यात्मिक समझ कई मामलों में अधिक प्रभावी व स्थाई सिद्ध हो सकती है।

अध्यात्म के ग्रन्थ यहाँ यह कहते हैं कि आत्मा के साथ लगी हुई कर्मवर्गणा का प्रभाव भी लाटरी की मशीन पर पड़ता है। यानी अध्यात्म एवं विज्ञान में मूल अंतर इस लाटरी खुलने की प्रक्रिया में यह आ जाता है कि विज्ञान चैतन्य तत्त्व एवं कर्म-वर्गणा के अस्तित्व को छोड़कर व्याख्या करना चाहता है। लाटरी खुलने की दार्शनिक व्याख्या में आत्मा के पुराने कार्यों के आधार पर आटोमैटिक निश्चित समय पर प्रभावी होने वाले रिमोट कंट्रोल के अस्तित्व की स्वीकृति भी है। भारतीय दर्शन ऐसे रिमोट कंट्रोल को आत्मा के साथ लगे हुए अति सूक्ष्म अचेतन कणों का पुंज या कर्म-वर्गणा के रूप में स्वीकारता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्दर्भ / टिप्पणी

१. स्वामी कार्तिकेय, कार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा ३१९.

२. मेरे नाम पर लाटरी खुलने वाला यह कथन काल्पनिक उदाहरण के रूप में है। इसे व अन्य भी ऐसे उदाहरणों को कृपया लेखक के जीवन से संबंधित न मानें।

३. लाटरी के उदाहरण का अर्थ कृपया यह न लिया जाए कि अध्यात्म लाटरी का समर्थन करता है।

४. यह लाटरी के खुलने की वैज्ञानिक प्रक्रिया की चर्चा आइन्स्टीन के समान कारण होने पर समान कार्य होने के सिद्धान्त पर आधारित है। इस संदर्भ में निम्नांकित वैज्ञानिक विकास भी ध्यान देने योग्य है।

इस शताब्दी में विकसित क्वाण्टम सिद्धान्त से चांस, संभावना आदि को वैज्ञानिक स्वीकृति मिली है। इतना ही नहीं, समान कारण होते हुए भी समान कार्य न होने की बात भी क्वाण्टम सिद्धान्त स्वीकारता है। इसी कारण क्वाण्टम सिद्धान्त में एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त ऐसा भी है, जिसे अनिश्चितता का सिद्धान्त (Uncertainty Principle) कहा जाता है। क्वाण्टम सिद्धान्त में कई बातें इतनी विशिष्ट हैं कि न्यूटन के नियम आदि पुराने चिरसम्मत सिद्धान्त इसके सामने फीके हो गए हैं। कोई भी आधुनिक प्रयोग क्वाण्टम सिद्धान्त को परास्त नहीं कर सका है, अपितु नए-नए प्रयोगों की व्याख्या करने हेतु क्वाण्टम सिद्धान्त की विशेष आवश्यकता होती है। क्वाण्टम सिद्धान्त के प्रशंसक आइन्स्टीन भी रहे हैं व क्वाण्टम सिद्धान्त को आइन्स्टीन ने भी पनपाया है किन्तु आइन्स्टीन क्वाण्टम सिद्धान्त के अनिश्चितता सिद्धान्त, चांस, संभावना आदि को अंतर्मन से स्वीकार नहीं कर सके। समान कारण होने पर भी समान कार्य नहीं होता है, इस बात को भी आइन्स्टीन ने अस्वीकार करना चाहा। उनका सोच यह रहा कि हम जिन्हें समान कारण कह रह हैं, वे समान कारण न हों, हो सकता है कुछ विभिन्न कारण ऐसे हों, जिन्हें हम अभी तक नहीं पहचान पाए हों। उनका एवं कई वैज्ञानिकों का सोच यह भी है कि जिसे विज्ञान अभी सूक्ष्म मान रहा है, वह सूक्ष्म न होकर भावी सूक्ष्म-सूक्ष्म की तुलना में स्थूल हो व जब सूक्ष्म-सूक्ष्म समझ में आ जाएगा, तब छिपे हुए सूक्ष्म-सूक्ष्म कारण ऐसे ज्ञात होंगे कि समान कारण से समान कार्य होता है, यह सिद्धान्त पुनः मान्य हो जाए।

५. Wayne W. Dyer, "You'll see it when you believe it. (Arrow Books, London, 1990), Page 247.

६. Louise L. Hay, 'You can heal your Life'. (Hay House, Santa Monica, USA) P.7

७. सन्दर्भ ५, पृ. ६७ पर वेन डायर निम्नांकित पंक्तियों में यह बात व्यक्त करते हैं :

"In our dreaming body we create everything that happens. We create all of the people, the events, everybody's reactions, the time frame, everything. We also create everything that we need for our waking consciousness."

८. जैन-दर्शन के सिद्धान्तों के अनुसार अध्यात्म के अभ्यास के धनी गृहत्यागी सन्त सभी के प्रति पूर्ण क्षमा भाव रखते हैं।

९. प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एवं ईसाई धर्म के विशेषज्ञ Dr. Norman Vincent Peale अपनी पुस्तक 'A Guide to confident Living' (Fawcatt publications, Inc. Greenwich, Conn.) के पृष्ठ १८१ पर अध्यात्म की महत्ता निम्नांकित रूप में व्यक्त करते हैं –

"In whatever way spiritual experience occurs, it is a method superior to psychological discipline and is more effective and certain of permanence. This comparison is not to be interpreted as minimizing the value of psychological discipline, a value I readily grant."

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org